प्राकृत ग्रन्थमाला – 23

पालि-प्राकृत साहित्य के व्यावहारिक पक्ष एवं वर्तमान में उनकी उपयोगिता

Rational Approach & Relevance of Pali-Prakrit Literature in Modern Era

प्रधानसम्पादक
प्रो. अर्कनाथ चौधरी

सम्पादक
प्रो. श्रीयांशकुमारसिंघई
डॉ. धर्मेन्द्रजैन
डॉ. जयवन्त खण्डारे

राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान (मानितविश्वविद्यालय)
जयपुर परिसर, जयपुर

Scanned with OKEN Scanner

ISBN : 978-81-926664-8-8

संरक्षक :
प्रो. परमेश्वरनारायण शास्त्री
कुलपति

संपादकमण्डल :
प्रो. श्रीयांश कुमार सिंघई
प्रो. रामकुमार शर्मा
प्रो. कमलेश कुमार जैन
डॉ. आनंद कुमार जैन
डॉ. प्रभातदास
डॉ. सतेन्द्र कुमार जैन
डॉ. अमित कुमार
डॉ. दर्शना जैन

© प्रकाशकाधीन

मूल्य : 500 रुपये

संस्करण : प्रथम, 2019

प्रतियाँ : 300

टंकक एवं मुद्रण :
एम.वी. प्रिन्टर एण्ड जनरल सप्लायर,
जयपुर

प्रकाशक :
प्राचार्य
राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान
(मानितविश्वविद्यालय)
जयपुर परिसर, त्रिवेणी नगर, जयपुर
दूरभाष : 2761115 (का.)
फैक्स : 0141-2760686
ईमेल : principaljp.in@gmail.com
वेबसाइट : www.rsksjaipur.ac.in

Petron :
Prof. Parmeshwar Narayan Shastri
Vice-Chancellor

Editorial Board :
Prof. Shriyansh Kumar Singhai
Prof. Ram Kumar Sharma
Prof. Kamlesh Kumar Jain
Dr. Anand Kumar Jain
Dr. Prabhat Das
Dr. Satendra Kumar Jain
Dr. Amit Kumar
Dr. Darshana Jain

© Under the Publisher

Price : 500/-

Edition : First, 2019

Copies : 300

Type Setting & Printer :
M.V. Printer & General Supplier
Jaipur

Publisher :
Principal
Rashtriya Sanskrit Sansthan
(Deemed University)
Jaipur Campus, Triveni Nagar,
Jaipur-302018
Phone : 0141-276115
Fax : 0141-2760686
Email : principaljp.in@gmail.com
Website : www.rsksjaipur.ac.in

Scanned with OKEN Scanner

* अनुक्रमणिका *

1. पालि एवं प्राकृत साहित्य के व्यावहारिक पक्ष एवं वर्तमान में उनकी उपयोगिता (मुख्य सम्बोधनं-Keynote Address)	प्रो. सत्यप्रकाश शर्मा	1
प्राकृतभाग:		
2. सौरसेनी प्राकृत साहित्य में अध्यात्म निरूपण का व्यावहारिक पक्ष	प्रो. श्रीयांश कुमार सिंघई	7
3. कुवलयमालाकहा की लोकधर्मिता और प्रासंगिकता	प्रो. प्रेम सुमन जैन	20
4. प्राकृत उपांग साहित्य में निहित व्यावहारिक पक्षों की प्रासंगिकता	डॉ. ऋषभ चन्द्र जैन 'फौजदार'	30
5. प्राकृत अलंकारों में लोकधर्मिता की आधुनिक काल में उपयोगिता	प्रो. कमलेश कुमार जैन	44
6. The Yoga tradition as reflected in the Prakrit texts and Commentaries with special reference to meditation based on the Dhyānaśataka of Āvaśyaka Niryukti	Jagat Ram Bhattacharyya	51
7. आधुनिक युग में प्राकृत भाषा के विकास की संभावनाएं	प्रो अनेकांत कुमार जैन	60
8. प्राकृतभाषा एवं साहित्य के व्यावहारिक-पक्ष	प्रो. सुदीप कुमार जैन	65
9. गउडवहो महाकाव्य की लोकधर्मिता की प्रासंगिकता	प्रो. डॉ. दीनानाथ शर्मा	72
10. अपभ्रंश कथाकाव्यों के व्यावहारिक पक्षों की वर्तमान में उपयोगिता	प्रो. सलोनी जोशी	77
11. प्राकृत साहित्य में लोकोक्तियाँ और उनका प्रचलन	प्रो. कमलेशकुमार जैन	81
12. वसुदेवहिण्डी प्राकृत कथासाहित्य में अंकित वास्तुविज्ञान की वर्तमान में प्रासंगिकता	प्रो.जयकुमार उपाध्ये	89
13. प्राचीन प्राकृत साहित्य में वाचिक व्यवहार के सूत्र	प्रो. दामोदर शास्त्री	98
14. प्राकृत शिलालेखों में निहित व्यावहारिक पक्षों की वर्तमान में प्रासंगिकता	डॉ. महावीर प्रभाचंद्र शास्त्री	105
15. उवासकदसाओ में वर्णित अनर्थदण्ड विरमण व्रत की वर्तमान परिप्रेक्ष्य में उपयोगिता	डॉ. समणी संगीत प्रज्ञा	113
16. दशवैकालिक आगम में समय-प्रबंधन के सूत्र	डॉ. समणी भास्कर प्रज्ञा	122
17. उत्तराध्ययनसूत्र में निहित व्यावहारिक पक्षों की प्रासंगिकता	डॉ. सुमत कुमार जैन	128
18. शौरसेनी प्राकृत साहित्य में दार्शनिक तथ्यों की प्रासंगिकता	डॉ. अनिल कुमार जैन	137
19. प्राकृत मुक्तकों के व्यावहारिक पक्षों की वर्तमान में प्रासंगिकता	डॉ. रजनीश शुक्ल	150
20. दंसणकहरयणकरंडु की प्रासंगिकता	डॉ. धर्मेन्द्र कुमार जैन	160
21. प्राकृत साहित्य में वर्णित पारिवारिक संबंधों की उपादेयता (प्राकृत कथा-ग्रंथों के संदर्भ में)	डॉ. तारा डागा	168

Scanned with OKEN Scanner

उत्तराध्ययनसूत्र में निहित व्यावहारिक पक्षों की प्रासंगिकता

डॉ. सुमत कुमार जैन, जयपुर

'उत्तराध्ययनसूत्र' जैनागम परम्परा का एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। यह श्वेताम्बर जैनागम साहित्य के मूलसूत्र के अन्तर्गत परिगणित है एवं भगवान् महावीर की अंतिम देशना के रूप में माना जाता है। इस ग्रन्थ का रचयिता कोई एक व्यक्ति नहीं है। इसमें जहाँ वेद और ब्राह्मण साहित्य-कालीन यज्ञ और जातिवाद की चर्चा है, वहाँ द्रव्य, गुण और पर्याय का वर्णन भी है। यदि इन्हें दर्शन-कालीन माना जाए तो यह निष्पन्न होता है कि निर्युक्तिकार की दृष्टि में भी उत्तराध्ययन एक कर्तृक नहीं है।[1]

उत्तराध्ययनसूत्र के अध्ययनों की रचना विभिन्न कालों में हुई और अंतिम वल्लभी वाचना के समय (ईस्वी सन् की 5 वीं शताब्दी) देवर्द्धिगणी ने उनका छत्तीस अध्ययनात्मक एक ग्रन्थ के रूप में संकलन किया।

विभिन्न कथाओं के माध्यम से जीवन के विविध सम्बन्धों की उचित और न्यायपूर्ण व्याख्याएँ एवं नैतिक और आचारभूत अवधारणाओं की स्थापना करके काव्य, कला, दर्शन, ज्ञान और चारित्र का उचित रूप में मिश्रण किया गया है। इनके अतिरिक्त धर्मशास्त्र के तत्त्वों और संदर्भो को भी इसमें सम्मिलित कर लिया गया है, जिससे इस आगम-ग्रन्थ की प्रासंगिकता अत्यधिक बढ़ गयी है।

व्यावहारिक प्रासंगिकता - इससे तात्पर्य ग्रन्थ में प्रतिपादित वैसे तथ्यों से है, जिसके निष्पादन से लोककल्याण सम्भव होता है। आगम-ग्रन्थों में प्रायः ऐसे व्यवहारों को अंकित करने का प्रयत्न किया जाता है, जो मानव मात्र को सद्भाव के लिये प्रेरित करते हैं, मानव मात्र के लिए कल्याण का साधन बनकर पृथ्वीतल को सुखसम्पन्न एवं शान्ति-भूषित स्वर्ग के रूप में परिणत करने की क्षमता रखते हैं तथा जिनका अनुसरण लोकस्तर को ऊँचा उठाता है। इन्हीं उद्देश्यों की पूर्ति के लिए मुनि, आचार्य एवं मनीषी अपने ग्रन्थ में लोक-व्यवहारों का चित्रण करते हैं।

Scanned with OKEN Scanner

उत्तराध्ययनसूत्र का प्रयोजन भी लोककल्याण से ओतप्रोत आदर्श लोक-व्यवहारों की स्थापना करना ही रहा है। इसके अन्तर्गत शिक्षा का महत्त्वपूर्ण घटक अनुशासन एवं विनय, सहनशीलता का उत्कर्ष परिषहजय, मानवता, सद्धर्म श्रवण, जागरुकता का संदेश, लोभ की अभिवृद्धि पर रोक, कर्म प्रधान समाज, ब्रह्मचर्य व्रतों का राजा, अनुशासनहीनता का प्रतीक अविनय, हिंसा पर अहिंसा की विजय, व्यापारिक-समुद्र यात्रा, राजीमती के रूप में उत्कृष्ट नारी-चरित्र, जातिवाद पर करारी चोट, तप की महत्ता, प्रमाद एक विघ्न, कर्म जैसा करोगे वैसा भरोगे, भाव-परिवर्तन का हेतु लेश्याचिंतन आदि विषयक व्यावहारिक प्रसंग वर्तमान में भटके, तनाव एवं अबोध व्यक्ति के जीवन में सम्यक्-प्रकाश करने वाले हैं। इन लोक-व्यवहारों को सामाजिक व्यवहार, पारिवारिक व्यवहार, धार्मिक व्यवहार, राजनीति व्यवहार, समन्वयात्मक व्यवहार आदि में ग्रहण किया जा सकता है। इन आदर्श व्यवहारों को समाज में स्थापित करने हेतु मार्गदर्शन ही उत्तराध्ययनसूत्र की प्रमुख उपयोगिता है।

सामाजिक व्यवहार

सामाजिक व्यवहार से तात्पर्य उन वृत्तियों से हैं, जिन पर मानव की समृद्धि एवं शान्ति निर्भर करती है और जिनके अभाव में वे नष्ट हो जाती हैं। रचना का सृजन करने वाला भी एक सामाजिक प्राणी होने के कारण समाज का शुभ चिन्तक होता है और अपनी रचनाओं में सामाजिक आदर्शों का निरूपण करता है। इन आदर्शों से मानव-जीवन में सुख एवं शान्ति का विकास होता है। सामाजिक व्यवहारों के अन्तर्गत मुख्य रूप से वर्णव्यवस्था, आजीविका के साधन, समाज में मुनियों का स्थान, समाज में नारी का स्थान, शिक्षा आदि तत्त्व आते हैं।

वर्णव्यवस्था- उत्तराध्ययन के पच्चीसवें अध्ययन में जन्मना जातिवाद का खंडन कर कर्मणा जातिवाद की प्रतिष्ठा की गई है। इसमें वर्णित है कि सम्यक्-बोध की प्राप्ति किसी भी वर्ण का व्यक्ति कर सकता है क्योंकि स्पष्टरूप से कहा गया है कि वर्णव्यवस्था जन्मगत नहीं, कर्मगत है। कहा भी है- कर्म से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र होता है।[2] उत्तराध्ययन में हरिकेशकम्बल नामक चाण्डाल का उल्लेख आता है, जो श्रमणों से शिक्षा पाकर ऋषि बन गया था और सभी गुणों से अलंकृत हुआ।[3] यहाँ पर वर्तमान में बढ़ रहे जातिवाद पर करारी चोट की गयी है क्योंकि मानव जन्म से नहीं कर्म से महान् बनता है।

आजीविका के साधन- समाज-संचालन में आजीविका का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसके अभाव में समाज की कल्पना भी नहीं की जा सकती। आजीविका प्राप्ति के विभिन्न साधन सदैव उपलब्ध रहते हैं। परन्तु समाज में वही साधन उपयोगी कहे जाते हैं, जो लोगों के

Scanned with OKEN Scanner

लिए शांति और सुख को प्रदान करते हों। उत्तराध्ययनसूत्र में भी यत्र-तत्र आजीविका के प्रधान साधनों का उल्लेख दृष्टिगोचर होता है। 'समुद्रपालीय' नामक इक्कीसवें अध्ययन में समुद्र-यात्रा का महत्त्वपूर्ण उल्लेख है। इस अध्ययन में जहाँ एक ओर धर्मतत्त्व का प्रतिपादन किया गया है, वही दूसरी ओर तत्कालीन प्रचलित व्यापारिक समुद्रयात्रा का भी वर्णन किया गया है। उस काल में भारत के व्यापारी दूर-दूर व्यापार के लिए जाते थे। सामुद्रिक व्यापार उन्नत अवस्था में था। व्यापारियों के निजी यानपात्र होते थे और वे एक स्थान से दूसरे स्थान पर माल लेकर आते-जाते थे। उस समय अनेक वस्तुओं का भारत से निर्यात होता था। उनमें सुपारी, स्वर्ण आदि मुख्य थे। इस तरह व्यापार व आजीविका का वर्णन उपलब्ध होता है, यह व्यवहार वर्तमान में भी दृष्टिगोचर होता है। इस अध्ययन में **ववहार (व्यवहार)** शब्द का उल्लेख हुआ है[4], जो आगम-काल में क्रय-विक्रय का द्योतक था।[5]

समाज में मुनियों का स्थान- भारतीय सामाजिक व्यवस्था सदा से धर्म प्रधान रही है। उसका धार्मिक अंग इतना सबल रहा है कि अन्य अंग भी इसके द्वारा प्रशासित होते रहे हैं इसीलिए धर्म के प्राण रूप मुनियों का स्थान समाज में सदैव ऊँचा रहा है। उत्तराध्ययनसूत्र में मुनियों को सर्वोच्च स्थान प्रदान किया है, किन्तु उन्हें जो समभाव में स्थित हों, कठोर ब्रह्मचर्य का पालन करते हों, तपस्या में रत हों और ज्ञान की आराधना में लीन हों।[6]

समाज में नारी का स्थान- भारतीय संस्कृति में नर की अपेक्षा नारी की विशेषता सिद्ध करने का प्रयास किया है। नारियों की प्रशंसा में कहा गया है कि नार्यस्तु यत्र पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता जिस घर में स्त्रियों का सम्मान होता है, वहाँ देवता भी आनन्दपूर्वक निवास करते हैं। वस्तुतः घर को सुख-समृद्धि से परिपूर्ण बनाने में नारियों का ही प्रथम हाथ होता है। पुरुष तो हमेशा एक रूप में ही दिखाई पड़ता है, जबकि स्त्रियाँ अपने विविध रूप में होकर अपने उत्तरदायित्व को पूर्ण करती हैं। मुख्यतः नारियों के कन्या, पत्नी और माता रूप होते हैं। इन सभी रूपों की अभिव्यक्ति उत्तराध्ययनसूत्र में उपलब्ध होती है। इसमें राजीमती का कन्या के रूप में उत्कृष्ट आदर्श वर्णित है, जो अनुकरणीय की श्रेणी में रखे जाने योग्य है।

शीलवती स्त्री के रूप में राजीमती का जैसा वर्णन उत्तराध्ययन में वर्णित है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। नेमिनाथ का लघुभ्राता रथनेमि राजीमती से विवाह का प्रस्ताव रखता है, तो वह स्पष्ट ही मना कर देती है, क्योंकि उसने मन से नेमिकुमार को अपना जीवन-साथी स्वीकार कर लिया था। पुनः जब साध्वी के रूप में पवित्र राजीमती को रथनेमि विषयभोग के लिए प्रेरित करता है, तब वह उसे फटकारती है और प्रतिबोधित करती है। जैसे कहा है।

Scanned with OKEN Scanner

धिगत्थु ते जसोकामी! जो तं जीवियकारणा।
वंतं इच्छसि आवेउं सेयं ते मरणं भवे॥[7]

अर्थात् हे यशःकामिन्! धिक्कार है तुझे जो तू भोगी जीवन के लिए वमी हुई वस्तु को पीने की इच्छा करता है। इससे तो तेरा मरण श्रेष्ठ है। इन बोधवचनों से राजीमती संयम से भटके रथनेमि को प्रतिबोधित कर सन्मार्ग पर लाती है। यहाँ राजीमती के रूप में नारी की उदात्तता का चित्रण किया गया है। इस प्रकार नारियाँ जहाँ भोग्योपभोग, ऐहिकसुख एवं सन्तानोत्पत्ति की साधन मानी जाती हैं, वहाँ राजीमती द्वारा अपने शील की रक्षा करना अत्यन्त अनुकरणीय व्यवहार है।

शिक्षा- यह समाज का एक अनिवार्य अंग है। इसके अभाव में समाज जड़ हो जाता है। प्राकृत ग्रन्थों में शिक्षारूप ज्ञान का उत्कृष्ट महत्त्व बताया गया है। ज्ञान आत्मा का भाव है।[8] ज्ञान स्वपरप्रकाशक है। ज्ञान को मनुष्य जीवन का सार कहा गया है।[9] यह मानव को मृदु बनाता है।[10] ज्ञान संसार के समस्त रहस्यों को प्रकाशित करने वाला है।[11]

विनय का जीवन में अत्यन्त महत्त्व है। विद्या से विनय आती है। विनयशीलता व्यक्तित्व की पहचान है। विनय नामक अध्ययन में विनय और अविनय के स्वरूप का विवेचन करते हुए कहा है कि अविनीत शिष्य सूकर और कुतिया की तरह होता है, वह सभी के लिए हेय होता है, जबकि विनीत शिष्य मेधावी होता है और वह गुरु एवं सभी के लिए उपादेय होता है।[12] विनीत का कथन करते हुए कहा गया है कि वह गुरु की आज्ञा और निर्देश का पालन करता, गुरु की शुश्रुषा करता है, गुरु के इंगित और आकार को जानता है। बिना पूछे कुछ नहीं बोलता, पूछने पर असत्य नहीं बोलता, क्रोध आ जाए तो उसे जीत लेता है, प्रिय और अप्रिय को अंगीकार करता है अर्थात् गुरु जैसा कहे उसे शिरोधार्य करता है।[13]

वर्तमान में विपरीत मार्ग पर चल रहे शिक्षार्थियों के सम्यक् बोध हेतु उत्तराध्ययन में वर्णित है कि विद्यार्थी की योग्यता एवं अयोग्यता क्या हो? इस हेतु बहुत ही मर्मस्पर्शी वर्णन किया गया है। यहाँ विद्यार्थी की योग्यता के लिए कहा है कि उसका आचार्यकुल में रहना, उत्साही, विद्या-प्रेमी, मधुरभाषी तथा शुभकर्मा होना आवश्यक माना गया है।[14] विद्यार्थी की योग्यताओं का विवेचन करते हुए उसमें इन आठ गुणों का रहना आवश्यक बताया गया है[15]- सहनशीलता, इन्द्रियनिग्रही, मधुर भाषी, शीलवान्, रसों में अलोलुपता, अक्रोधी, शीलवृत्ति की दृढ़ता और सत्यभाषी। आदिपुराण के अनुसार विद्यार्थी में जिन मौलिक गुणों का होना अनिवार्य है, वे ये हैं[16] - जिज्ञासावृत्ति, श्रद्धा (अध्ययन और अध्यापक दोनों के प्रति आस्था),

Scanned with OKEN Scanner

विनयशीलता, शुश्रूषा, श्रवण (पाठ-श्रवण के प्रति सतर्कता एवं जागरूकता), ग्रहण (गुरु द्वारा अध्यापन किए गए विषय को ग्रहण करने की अर्हता), धारणा (पठित विषय को सदैव स्मरण रखने की क्षमता), स्मृति (कालान्तर में नहीं भूलना), ऊह (तर्कणा-शक्ति), अपोह (पठित ज्ञान के आधार पर विचार-शक्ति का प्राबल्य एवं अकरणीय त्याग), निर्णीति (विचार करने की क्षमता), संयम, प्रमाद का अभाव, सहज प्रतिभा (विशेष क्षयोपशम शक्ति) और अभ्यनुयोग॥

उत्तराध्ययन में शिक्षार्थी की अयोग्यता के सम्बन्ध में वर्णित है कि अहंकार, क्रोध, प्रमाद, रोग तथा आलस्य से युक्त शिक्षार्थी शिक्षा प्राप्त करने का अधिकारी नहीं है।[17] इसी प्रकार जिनसेनाचार्य ने भी कठोर परिणामी, विषयी, सारतत्त्व के स्थान पर निःसार का ग्राहक, हिंसकवृत्ति, शब्द ज्ञान और अर्थज्ञान की न्यूनता, धूर्तता, कृतघ्नता, ग्रहण-शक्ति का अभाव, दुर्गुण ग्राहकता, उद्दण्डता, प्रतिभा की कमी, स्मरणशक्ति का अभाव, धारणशक्ति का अभाव तथा हठग्राहिता को अयोग्यता माना है।[18] षट्खंडागम में भी बुरे शिष्य के लक्षण संक्षेप में उपमा के माध्यम से वर्णित हैं। कहा गया है कि शैल घन, भग्न घट, अहि, चलनी, भैंसा, मेंढा, जोंक, शुक, माटी और मच्छर के समान शिष्यों को जो श्रुत का व्याख्यान करता है, वह मूढ़ रस-गारव के अधीन होकर विषयों की लोलुपता रूप विष के वश मूर्छित हो बोधि अर्थात् रत्नत्रय की प्राप्ति से भ्रष्ट होकर भव-भवन में चिरकाल तक परिभ्रमण करता है।[19]

उक्त तथ्यों के आलोक में यह कहा जा सकता है कि आज जनजीवन में अशान्ति और अनुशासनहीनता के कारण बादल मँडरा रहे हैं। उसका मूल कारण जीवन में विनय का अभाव है और अहंकार की वृद्धि है तथा विनय का अभाव पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रिय जीवनसौधान की ओर की तरह बढ़ रहा है, जिससे न परिवार सुखी है, न समाज सुखी है और न राष्ट्र के अधिनायक ही शान्ति में हैं।

पारिवारिक व्यवहार

मानव निर्मित समस्त संस्थाओं में परिवार एक आवश्यक आधारभूत संस्था है। संसार के प्रत्येक वर्ग में इसका संगठन अनिवार्य रूप से पाया जाता है। यह मुख्यरूप से भावनात्मक घनिष्ठता का वातावरण तैयार करता है तथा शिशु का समुचित पालन-पोषण कर उसके विकास के लिए आवश्यक पृष्ठभूमि तैयार करता है। इसका व्यावहारिक स्वरूप उसके घटकों यथा-माता-पिता, भाई-भावज के पारस्परिक सम्बन्धों पर निर्भर करता है। अतः इस व्यवहार के अन्तर्गत हम दाम्पत्य, पिता-पुत्र, माता-पुत्र, भाई-भाई, पिता-पुत्री, माता-पुत्री, भाई-बहिन,

चाचा-भतीजा, देवर-भावज के पारस्परिक सम्बन्धों को ले सकते हैं। प्रायः इन सभी का हृदयग्राही चित्रण उत्तराध्ययनसूत्र में प्राप्त होता है।

धार्मिक व्यवहार

धर्म भारतीय संस्कृति का प्राण माना जाता है। यही कारण है कि भारतीय साहित्य में धर्म का निरूपण अनिवार्य रूप से उपलब्ध होता है। इस सम्बन्ध में आचार्य जिनसेन का स्पष्ट कथन है - कविता वही प्रशंसनीय समझी जाती है, जो धर्मशास्त्र से सम्बन्ध रखती है। शेष कविताएँ तो मनोहर होने पर भी मात्र पापास्त्रव के लिए ही होती हैं। कितने ही मिथ्यादृष्टि कानों को प्रिय लगने वाले, मनोहर काव्यों की रचना करते हैं, परन्तु उनके वे काव्य अधर्मानुबंधी होने से धर्मशास्त्र के निरूपक न होने के कारण सज्जनों को संतुष्ट नहीं कर पाते। अतः बुद्धिमानों को शास्त्र और अर्थ का अच्छी तरह अभ्यास कर तथा महाकवियों की उपासना करके ऐसे काव्यों की रचना करनी चाहिए जो धर्मोपदेश सहित हो, प्रशंसनीय हो और यश को बढ़ाने वाला हो।[20]

उत्तराध्ययनसूत्र में धार्मिक व्यवहार काव्य के प्राण के रूप में प्रतिष्ठित हुआ है। इसमें धार्मिक व्यवहार के अन्तर्गत कदम-कदम पर धार्मिक प्रसंगों के दर्शन उपलब्ध होते हैं, जिनमें मुनियों के धार्मिक व्यवहार प्रमुख हैं। इस ग्रन्थ में प्रायः सभी ने धर्म को जीवन के लिए एक आवश्यक तत्त्व स्वीकार किया है। धर्म के अन्तर्गत जीवन की यथार्थता का विवेचन करते हुए कथन है कि यह जीवन बिजली की तरह अस्थिर है और सब कुछ क्षण में नष्ट हो जाने वाला है। यदि प्राणी शाश्वत सुख चाहता है, तो उसे धर्म को अनिवार्यतः अंगीकार करना चाहिए। एक प्रसंग में राजीमती को दीक्षा के लिए जाते हुए कृष्णजी ने धार्मिक भावना से ओतप्रोत आशीर्वाद देते हुए कहा- संसारसागरं घोरं, तर कन्ने! लहुं लहुं।[21] अर्थात् हे कन्या! तू घोर संसार-सागर को शीघ्रता से पार कर।

जीवन में धर्म का पालन अनिवार्य बताया गया है। इसे प्रभावी बनाने के लिए प्रायः सभी पात्रों को चाहे वह राजा हो या रंक, पुरुष हों या स्त्री धर्म में दीक्षित होते हुए दिखाया गया है। इसके परिणाम में स्वर्ग व मोक्ष की प्राप्ति और तिरस्कार में दुःख का प्रतिपादन किया गया है।

धर्म का प्राण अहिंसा को माना है। वर्णित है कि अहिंसा की परिपालना के लिए नेमिकुमार ने विवाह का परित्याग कर दिया और प्रव्रज्या धारण कर मोक्ष को प्राप्त किया।[22]

राजनीतिक व्यवहार

राजनीतिक व्यवहार से तात्पर्य राजनीति की उस आदर्शनीति से है, जिसके अनुगमन

Scanned with OKEN Scanner

पर प्रजा की रक्षा और शासन की सुदृढ़ता निर्भर करती है। राजनीति का मुख्य उद्देश्य मानव-चेतना को दिशा-निर्देश कर विकास के चरम-लक्ष्य तक पहुँचाना है और यह तभी सम्भव हो सकता है, जब राजनीति एक आदर्श व्यावहारिक नीति से प्रेरित हो। उत्तराध्ययनसूत्र में उल्लिखित कुछ ऐसे ही राजनीतिक व्यवहारों का निरूपण निम्न प्रकार अवलोकनीय है-

राज्य के उत्तराधिकारी का चुनाव- उत्तराधिकारी के चुनाव में राजतंत्र के अनुरूप वंश-परम्परा की पद्धति ही स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती है। इस पद्धति में पंचों की राय, विद्वानों की राय, प्रजा की राय आदि अपेक्षित नहीं है। इस पद्धति के अनुसार राजा अपने बड़े पुत्र अथवा अपने भाई को राज्यपद का अधिकार प्रदान करता है। जिसको यह पद मिल गया उसे ही प्रजा को अपना राजा मानकर उसके आदेशों का पालन करना है। ऐसे प्रसंग उत्तराध्ययन के कथानकों में पदे-पदे देखे जा सकते हैं, जहाँ पिता ने अपने पुत्र को राज्य में स्थापित कर स्वयं दीक्षा ग्रहण कर ली।

राज्य में संचालित दण्डविधान के सम्बन्ध में कहा गया है कि उस समय जो व्यक्ति चोरी करता था, उसको कठोर दण्ड दिया जाता था। जिसे मृत्युदण्ड दिया जाता था, उसे कनेर के लाल फूलों की माला पहनाई जाती थी, लाल वस्त्र पहनाये जाते थे, फिर उसे नगर में उसके कुकृत्यों की जानकारी दी जाती थी और उसे नगर के राजमार्ग से वधभूमि की ओर ले जाया जाता था। यह इसीलिए किया जाता था, जिससे दर्शक इस प्रकार के अपराध करने का दुस्साहस न करें।[23]

इक्कीसवें अध्ययन में तात्कालिक राज्य-व्यवस्था का उल्लेख हुआ है। भारत उस समय अनेक छोटे-छोटे राज्यों में बँटा हुआ था। उनमें परस्पर संघर्ष भी होता था। अतः मुनि को उचित काल में एवं सावधानीपूर्वक एक स्थान से दूसरे स्थान में जाना चाहिए।[24]

उपर्युक्त राजनीतिक प्रसंगों के अतिरिक्त राजा और व्यापारी का सम्बन्ध, राजा के कुशल दूत आदि प्रसंग भी यथास्थान प्राप्त होते हैं, जो व्यावहारिक उपयोगिता की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं।

समन्वयात्मक व्यवहार

लोककल्याण का एक महत्त्वपूर्ण उपाय समन्वयात्मक व्यवहार अर्थात् एकान्त दृष्टि का त्याग है। इसके अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं है। कवि लोक व्यवहारों की स्थापना अपने काव्य में जब इसी दृष्टिकोण से करता है, तभी उसका काव्य लोक-कल्याणकारी तथा सर्वव्यापी बन पाता है, अन्यथा नहीं। डॉ. हीरालाल जी का कथन है कि राम और लक्ष्मण तथा कृष्ण

Scanned with OKEN Scanner

और बलदेव के प्रति जनता का पूज्य भाव रहा है व उन्हें अवतार-पुरुष माना गया है। जैनपरम्परा में इन्हें त्रेसठ-श्लाका पुरुषों में माना है और अपने पुराणों में विस्तार से उनके जीवन-चरित्र का वर्णन किया है। जो लोग जैन पुराणों को हल्की और उथली दृष्टि से देखते हैं, वे इस बात पर हँसते हैं कि इन पुराणों में महापुरुषों को जैन मतावलम्बी माना गया है व कथाओं में व्यर्थ हेर-फेर किए गये हैं। उनकी दृष्टि इस बात पर नहीं जाती कि कितनी आत्मीयता से जैनियों ने उन्हें अपने भी पूज्य बना लिया है और इस प्रकार अपने तथा अन्य देशीय भाईयों की भावना की रक्षा की है। डॉ. जैन का यह मन्तव्य समन्वयात्मक दृष्टिकोण का परिचायक है। उत्तराध्ययनसूत्र श्रमण परम्परा में इसी समन्वय का ही प्रतिनिधित्व करता है।

अन्ततः संक्षेप में कहा जा सकता है कि 'उत्तराध्ययन' एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रचना है, जिसमें सामान्य जीवन से लेकर परलोक जीवन तक को संवारने के लिए उत्तमोत्तम व्यावहारिक उपाय समाविष्ट हैं। सामान्य जीवन में श्रावक धर्म का निर्वहण कर तथा विशिष्ट जीवन में श्रमण धर्म का पालन कर मनुष्य अपने जीवन का परम-लक्ष्य प्राप्त कर सकता है। व्यावहारिक उपाय इस रीति से निरूपित किये गये हैं कि अन्य की धार्मिक भावनाएँ किसी तरह आहत न हों। 'उत्तराध्ययन' की यह वर्णन-शैली आज भी उपयोगी है। आज जहाँ असहिष्णुता का मुद्दा सम्पूर्ण समाज को उद्वेलित किये हुए है, वहीं इस ग्रन्थ की कथन-शैली समस्या के समाधान में मार्गदर्शक का काम करती है।

सन्दर्भ सूची

1. अंगप्पभवा जिणभासिया य पत्तेयबुद्धसंवाया।
   वंधे मुक्खे य कया छत्तीसं उत्तरज्झयणा। उत्तराध्ययन नियुक्ति, गाथा 4
2. कम्मुणा बंभणो होइ, कम्मुणा होइ खत्तियो।
   वइस्सो कम्मुणा होइ, सुद्दो हवइ कम्मुणा। उत्तराध्ययनसूत्र, अध्ययन-25 गाथा 31 जैनविश्वभारती, लाडनूं, 2006ई.
3. सोवागकुलसंभूओ, गुणत्तरो मुणी।
   हरिएसबलो नाम, आसि भिक्खू जिइंदियो। उत्तराध्ययनसूत्र, अध्ययन-12 गाथा 31, जैनविश्वभारती, लाडनूं, 2006ई.
4. पिहुंडे ववहरंतस्स, वाणिओ देइ धूयरं।
   तं ससत्तं पइगिज्झ, संदेसमह पत्थिओ। उत्तराध्ययनसूत्र, गाथा 21/3
5. उत्तरज्झयणाणि, सम्पा. आचार्य महाप्रज्ञ, वाचना प्रमुख- आचार्य तुलसी, जैनविश्वभारती, लाडनूं, पंचम संस्करण, 2006ई. पृष्ठ 346

Scanned with OKEN Scanner

6. समयाए समणो होइ, बम्भचेरेण बम्भणो।
णाणेण य मुणी होई, तवेणं होइ तावसो। उत्तराध्ययनसूत्र, गाथा 25/30
7. उत्तराध्ययन,22 अध्ययन गाथा 42
8. णाणं भावो तत्तो णाणणो तिलोके भाव्य, गाथा-75, सन्मति ज्ञानपीठ, आगरा, 2008ई.
9. णाणं णरस्स सारो, सारो वि णरस्स होइ सम्मत्तं।
सम्मत्ताओ चरणं चरणाओ होइ णिव्वाणं।-दर्शनपाहुड़(गाथा-31)/ अष्टपाहुड, आचार्य कुन्दकुन्द, श्रीश्रुतसागरसूरि कृत संस्कृतटीका सहित, हिन्दी अनुवाद- डॉ. पन्नालाल साहित्याचार्य, भारतवर्षीय अनेकान्त विद्वत् परिषद्, वाराणसी, 1992ई.
10. सद्दकारणं नाणं, तेणेव य जे सदं समुव्वहंति।
ऊणगभायणसरिसा, अगदो वि विसायते तेसिं॥ - बृहत्कल्पभाष्य(गाथा-783), संघदासगणि, सम्पा.अनु.- मुनि दुलहराज, जैन विश्वभारती, लाडनूं, पहला संस्करण, 2007ई.
11. सव्वजगुज्जोयकरं नाणं। व्यवहार भाष्य(गाथा-7/216) सम्पा.अनु.- मुनि दुलहराज, जैन विश्वभारती, लाडनूं, पहला संस्करण, 2004ई.
12. जहा सुणी पूइकण्णी निक्कसिज्जइ सव्वसो।
एवं दुस्सील पडिणीए मुहरी निक्कसिज्जई॥
कणकुण्डगं चइत्ताणं विट्ठं भुंजइ सूयरे।
एवंसीलं चइत्ताणं दुस्सीले रमई मिए। उत्तराध्ययन, 1/4 से लेकर 14 तक
13. उत्तराध्ययन, गाथा-1/2 एवं 14
14. कसे गुरुकुले निच्चं जोगवं उवहाणवं।
पियंकरे पियंवाई से सिक्खं लद्धुमरिहई॥ - उत्तराध्ययन,11.14
15. उत्तराध्ययनसूत्र (लाहौर संस्करण), 11.4-5, पृ.438-39.
16. आदिपुराण (भाग-1) - 1.68, 1.140-48 एवं महापुराण (भाग-2) 38.106-118, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन।
17. अह पंचहिं ठाणेहिं जेहिं सिक्खा न लाइ।
थम्भा कोहा पमाएणं रोगेणा लस्सएण य॥ - उत्तराध्ययनसूत्र, 11/3
18. आदिपुराण (भाग-1) - 1.138-141
19. षट्खंडागम - धवला टीका समन्वित-, 62-63, प्र. जैन साहित्योद्धारक फंड कार्यालय, अमरावती, 1939ई।
20. आदिपुराण, आचार्य जिनसेन, सम्पा.-डॉ. पन्नालाल साहित्याचार्य, प्रकाशन- भारतीय ज्ञानपीठ, नईदिल्ली, 1/63-64एवं 74
21. उत्तराध्ययनसूत्र, 22 वाँ अध्ययन, गाथा 31
22. उत्तराध्ययनसूत्र, 22 वाँ अध्ययन, गाथा 14
23. उत्तराध्ययनसूत्र, 21 वाँ अध्ययन, गाथा 8 एवं पृष्ठ 346
24. कालेण कालं विहरेज्ज रट्ठे, बलाबलं जाणिय अप्पणो य।
सीहो व सद्देण न संतसेज्जा, वयजोग सुच्चा न असब्भमाहु। उत्तराध्ययन, गाथा 21/14

Scanned with OKEN Scanner